VPM CLASSES

NTA UGC NET

ECONOMICS

SAMPLE THEORY - *(Hindi Medium)*

– विकास एवं वृद्धि के सिद्धांत

– विकास मॉडल

9001894070

www.vpmclasses.com

UGC NET ECONOMICS

SAMPLE THEORY

PAPER - II

- विकास एवं वृद्धि के सिद्धांत
- विकास मॉडल

VPM CLASSES
For IIT-JAM, JNU, GATE, NET, NIMCET and Other Entrance Exams

Web Site www.vpmclasses.com E-mail-vpmclasses@yahoo.com

विकास एवं वृद्धि के सिद्धांत

- **जोन रोबिन्सन मॉडल**

श्रीमती जोन रॉबिन्स ने अपनी पुस्तक The Acculmulation of capital में खेल के पूंजीवादी नियमों पर आधारित आर्थिक वृद्धि के मॉडल का निर्माण किया है।

- **मान्यताएं**

रॉबिन्स का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं–

1. अर्थव्यवस्थाा बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के तथा बंद (close economy) है।
2. केवल पूंजी एवं श्रम ही ऐसी अर्थव्यस्था में उत्पादकीय साधन है।
3. पूंजी तथा श्रम स्थिर अनुपातों में प्रयोग किए जाते हैं।
4. तकनीकी प्रगति तटस्थ होती है।
5. उद्यमी जितनी चाहे श्रम को रोजगार पर लगा सकते हैं।
6. श्रमिक तथा उद्यमी केवल दो ही वर्ग होते हैं जिनके बीच आय का वितरण किया जाता है।
7. श्रमिकों द्वारा कोई बचत नहीं की जाती तथा वे अपनी समस्त मजदूरी आय को उपभोग पर व्यय कर देते हैं।
8. कीमत पर अपरिवर्तित रहता है।
9. बचत करने और लाभों से प्राप्त अपनी समूची आय को पूंजी निर्माण के लिए निवेश करने के सिवाय उद्यमी कुछ भी उपभोग नहीं करते।

रॉबिन्सन मॉडल में शुद्ध राष्ट्रीय आय (Net National Income) कुल मजदूरी तथा कुल लाभों का जोड़ होता है। जिसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

$$Y - pK + wN$$

जहां Y शुद्ध राष्ट्रीय आय है, w वास्तविक मतदूरी दर, N रोजगार पर लगे श्रमिको की संख्या, p लाभ कर दर तथा K पूंजी की मात्राा है; चूंकि रॉबिन्सन मॉडल में लाभ–दर महत्त्वपूर्ण है, इसलिए उपरोक्त समीकरण को इस प्रकार व्यक्ति किया जा सकता है–

$$Y - wN = pK$$

$$\text{या } p = \frac{Y - wN}{K}$$

बाएं पक्ष को N से विभाजित करने से

VPM CLASSES

$$p = \frac{\frac{Y}{N} - w}{K/N}$$

ऊपर के समीकरण में $\frac{Y}{N} = lp$ तथा $\frac{K}{N} = r$ को प्रतिस्थापित करने से $p = \frac{lp - w}{r}$

जहां पर p = लाभ की दर, lp श्रम की उत्पादकता, w वास्तविक मजदूरी दर, तथा r पूंजी– श्रेम अनुपात है। यदि आय स्थित रहती है तो मतदूरी दर, तथा r पूंजी–श्रम अनुपात है। यदि आय स्थित रहती है तो मजदूरी दर कम होगी लेकिन यदि आय बढ़ती है तो मजदूरी दर स्थित रहेगी। जिससे लाभ की दर बढ़ जाएगी। लाभ की दर भी बढ़ सकती है जब पूंजी–श्रम अनुपात (r) कम हो जाए। इस तरह उद्यमी अपने लाभ को अधिकतम करते हैं।

रॉबिन्सन के अनुसार मजदूरी आय में से बचत का भाग शून्य होता है लेकिन उद्यमी निवेश केवल लाभ के उद्देश्य से करते हैं, अतः I = S, निवेश I = ΔK, जहां ΔK वास्तविक पूंजी में वृद्धि को व्यक्त करता है, जबकि–

$$S = pK$$

अतः $pK = \Delta k \ (\because S = 1)$

या, $p = \frac{\Delta K}{K}$

उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि लाभ की दर, पूंजी में वृद्धि की दर के बराबर होती है।

- **स्वर्ण युग**

पूंजी की वृद्धि दर $\left(\frac{\Delta K}{K}\right)$ के अतिरिक्त, जनसंख्या की वृद्धि दर $\left(\frac{\Delta N}{N}\right)$ दूसरा तत्त्व है जो अर्थव्यस्था की वृद्धि दर को प्रभावित करती है। जब जनसंख्या की वृद्धि दर, पूंजी की वृद्धि के बराबर हो जाती है अर्थात

$$\frac{\Delta N}{N} = \frac{\Delta K}{K}$$

तब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार संतुलन में होती है। रॉबिन्सन ने इसे 'स्वर्ण युग' कहा है। रॉबिन्सन का मानना है कि यदि अर्थव्यस्था 'स्वर्णयुग' के मार्ग से हट जाए तो कुछ शक्तियां ऐसी होती हैं उन्हें पुनः संतुलन स्थिति में लाने का प्रयत्न करती है। मान लें कि जनसंख्या वृद्धि की दी पूंजी वृद्धि की दर से

अधिक है अर्थात $\frac{\Delta K}{N} > \frac{\Delta K}{K}$ ऐसी स्थिति उत्तरोत्तर अधिक अल्प रोजगार लाती है। ऐसी स्थिति में, अधिक श्रम की पूर्ति मुद्रा मजदूरी को घटा देगा और यदि कीमत स्तर तक बढ़ा देगी। मुद्रा मजदूरी की दृढ़ता के कारण यदि वास्तविक मजदूरी कम नहीं होती तो संतुलनकारी तंत्र काम नहीं करेगा। स्वर्ण युग संतुलन पुनः स्थापित नहीं हो सकेगा और उत्तरोत्तर अल्परोजगार कायम रहेगा।

रॉबिन्सन के अनुसार अर्थव्यवस्था उस समय स्वर्ण युग में होती है, जब 'संभाव्य वृद्धि अनुपात' (Potential growthrate) प्राप्त होता है। संभाव्य वृद्धि अनुपात पूंजी संख्य की उस उच्चतम दर को प्रकट करता है, जो लाभ की स्थिर दर पर हमेशा के लिए कायम रखी जा सकती है। यह 'संभाव्य वृद्धि दर– श्रम शक्ति की आनुपातिक दर तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि की आनुपातिक दर के लगभग बराबर होती है। स्वर्ण युग की परिस्थितियां वृद्धि अनुपात की स्थिरता चाहती हैं क्योंकि वृद्धि अनुपात (growthratio) में बार–बार परिवर्तन स्वर्ण युग के मार्ग से हट जाती है। रॉबिन्सन स्थैतिक स्थिति (static state) को स्वर्ण युग की विशिष्ट अवस्था मानते हैं जिसमें वृद्धि अनुपात शून्य होता है, लाभ की दर भी शून्य होती है और उद्योग के समस्त उत्पादन को मजदूरी खपा लेती है (wages absorb the entire net output of industry). रॉबिन्सन इस स्थिति को ' आर्थिक निर्वाण की स्थिति' (The state of economic bliss) कहती है क्योंकि उपभोग अधिकतम स्तर पर होता है, जिसे दी हुई तकनीकी परिस्थितियों में स्थायी रुप से कायम रखा जा सकता है।

- **समीक्षा**

समीक्षाः रॉबिन्सन का वृद्धि मॉडल हैरड के वृद्धि मॉडल का विस्तार है। संभाव्य वृद्धि दी (Potential growth rate) हैरेड की प्राकृतिक वृद्धि दी (natural growth rate) के समान है।

स्वर्ण युग में वास्तविक वृद्धि दर (G) तथा प्राकृतिक वृद्धि दर (Gn) एक दूसरे के बराबर होती है और अभीष्ट वृद्धि दर (warranted rate of growth -Gw) उनके अनुरुप होती है। दोनों मॉडलें स्थित अनुपात तथा तटस्थ तकनीकी परिस्थितियों को स्वीकार करते है। लेकिन रॉबिल्सन का सिद्धांत लाभ मतदूरी संबंध पर तथा श्रम उत्पादकता पर निर्भर करता है। इसके विपरीत हैरड का सिद्धांत बचत आय अनुपात तथा पूंजी उत्पादकता पर निर्भर करता है। इसके विपरीत हैरड का सिद्धांत बचत आय अनुपात तथा पूंजी संचय में श्रम के महत्त्व पर बल देता है, जबकि हैरड का मॉडल पूंजी के महत्त्व पर।

कालडर मॉडल

VPM CLASSES

कालडर मॉडल 'क्लासिकी बचत फलन' पर आधारित हैं जिसका अभिप्राय यह है कि बचत, लाभ (P) और राष्ट्रीय आय (Y) के अनुपात के बराबर होती है।

प्रो. कालडर का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. राष्ट्रीय आय में केवल मजदूरी (W) तथा लाभ (P) शामिल होते हैं। मजदूरी में शारीरिक श्रम और वेतन दोनों आते हैं जबकि लाभ में सम्पत्ति स्वामियों और उद्यमियों की आय को शामिल किया जाता है।

2. मजदूरों की सीमान्त उपभोग पृवृत्ति (MPC) पूंजीपतियों की अपेक्षा अधिक होती है। जिसके परिणामस्वरुप मजदूरों की सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS), पूंजीपतियों की अपेक्षा बहुत कम होती है।

3. पूर्ण रोजगार की स्थिति पाई जाती है जिसमें कुल आय (Y) दी हुई है।

4. अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार शक्ति के तत्त्व पाए जाते हैं।

उपर्युक्त मान्यताओं के रहते प्रो. कालडर के वृद्धि मॉडल के अनुसार शुद्ध राष्ट्रीय आय (Y) कुल मजदूरी की राशि (W) तथा कुल लाभों (P) का योग के बराबर होती है। अतः

$$Y = W + P$$

या $$W = Y - P$$

अर्थव्यवस्था की कुल बचत (S), मजदूरी की राशि में से कुल बचतें (S_w) एवं लाभों मं से कुल बचतें (S_p) के योग के बराबर होता है। अतः

$$S = S_s + S_p$$

यदि मजदूरों की सीमान्त बचत प्रवृत्ति को sw तथा पूंजीपतियों की सीमान्त बचत प्रवृत्ति को sp मान लें तो

$$S = swW + spP$$

लेकिन $$I = S$$

अतः $$I = swW + spP$$

$$I = spP + sw\,[Y - P] \quad [\because W = Y - P]$$

$$I = spP + swY - swP$$

$$I = (sp + sw)\,P + swY$$

निवेश का राष्ट्रीय आय से अनुपात जानने के लिए दोनों ओर Y से भाग देने से परोक्त समीकरण का रुप इस प्रकार हो जाएगा–

$$\frac{1}{Y} = \frac{(sp - sw)\ P}{Y} + sw \qquad ...(1)$$

समीकरण (1) से लाभ का राष्ट्रीय आय का अनुपात होगा

$$\frac{P}{Y} = \frac{1}{(sp - sw)} \times \frac{I}{Y} \qquad ...(2)$$

परोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि मजदूरों तथा पूंजीपतियों आय में लाभ का भाग कुल उत्पादन से निवेश के अनुपात पर निर्भर करता है। प्रो. कालडर का मॉडल पूर्ण रोजगार की धारणा के साथ इस बात को दर्शाता है कि नकद मजदूरी के स्तर के संबंध में कीमतों के स्तर को मांग निर्धारित करती है। निवेश स्तर में वृद्धि, मांग और कीमतों के स्तर को बढ़ा देगी। परिणामस्वरुप, राष्ट्रीय आय में लाभ का भाग बढ़ेगा परंतु मजदूरी के स्तर में वृद्धि, मांग और कीमतों के स्तर को बढ़ा देगी। परिणामस्वरुप, राष्ट्रीय आय में लाभ का भाग बढ़ेगा परंतु मतदूरी का भाग घटेगा।

कालडर का मॉडल उस समय क्रियाशील होता है जब दोनों बचत प्रवृत्तियां अलग–अलग ($sp \neq sw$) हों और मजदूरों की सीमान्त बचत प्रवृत्ति की अपेक्षा पूंतीपतियों की सीमान्त बचत प्रवृत्ति अधिक हो। $sp > sw$ स्थिरता की अवस्था है।

यदि sp से sw अधिक हो तो कीमतों में कमी होने से मांग में कमी होगी और कीमतों में संचयी (cumulative) गिरावट आएगी। इस प्रकार कीमतों में वृद्धि भी संचयी होगी।

कालडर के अनुसार व्यवस्था की ' स्थिरता की कोटि' (degree of stability) दोनों सीमान्त बचत प्रवृत्तियों के अन्तर के व्युत्क्रम $\left(\frac{1}{(sp - sw)}\right)$ पर निर्भर करती है। जिसे कालडर 'आय वितरण की संवेदनशीलता का गुणांक' (coefficient of sensitivity of income distribution) कहता है। यदि दोनों बचत प्रवृत्तियों में अन्तर कम है तो गुणांक का मान अधिक होगा और निवेश आय अनुपात (I/Y) में थोड़ा परिवर्तन से आय वितरण (P/Y) में अपेक्षाकृत बड़े परिवर्तन होंगे और विलोमशः। यदि मजदूरों की सीमान्त बचत प्रवृत्ति (sw) शून्य है तो लाभों की मात्राा निवेश की राशि तथा पूंजीपति उपभोग के योग के बराबर होगी।

अर्थात् $P = \frac{1}{sP} + 1$

यह 'अक्षय भंडार' (widow's cruse) जहां उद्यमियों के उपयोग में वृद्धि उनके कुल लाभ के बिल्कुल उपभोग की मात्राा के बराबर बढ़ा देती है। यदि किसी दीर्घकालीन समय में 1/Y और Sp को स्थिर मान

लिया जाए जो राष्ट्रीय आय में मजदूरी का भाग भी स्थिर होगा। अन्य शब्दों में जब प्रति व्यक्ति उत्पादन का भाग भी स्थिर होगा। अन्य शब्दों में, जब प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ता है तो वास्तविक मजदूरी अपने आप बढ़ जाएगी। यदि मजदूरां ककी सीमान्त बचत प्रवृत्ति धनात्मक हो तो कुल लाभों में मजदूरों की बचत की राशि (Sw) के बराबर कमी आ जाएगी। जब मजदूरों की बचतें घट जाती है तो कुल लाभ, निवेशों में परिवर्तन की अपेक्षा अधिक मात्रा में बढ़ जाते हैं और आय में मजदूरी का भाग कम हो जाती है। दूसरी ओर, जब श्रमिकों की बचते बढ़ती हैं तो निवेश में परिवर्तन की अपेक्षा कुल लाभ अधिक मात्रा में घट जाते हैं और आय में मजदूरी का भाग बढ जाता है।

तकनीकी प्रगति

तकनीकी प्रगति का अभिप्राय

तकनीकी प्रगति एक अन्यन्त व्यापक शब्द है जिसमें प्रौद्योगिक ज्ञान के विकास के अतिरिक्त तकनीकी परिवर्तन, नवप्रवर्तन और उद्यमशीलता का भी समावेश होता है। प्रो. कुजनेट्स ने तकनीकी प्रगति के अन्तर्गत पांच तत्वों का समावेश किया है:

(i) वैज्ञानिक खोज (Scienticic Discovery) अर्थात् तकनीकी ज्ञान में वृद्धि करना, (ii) अविष्कार (Inventions) अर्थात् विद्यमान ज्ञान का सर्वोतम ढंग से प्रयोग करना, (iii) नव–प्रवर्तन अर्थात उत्पादन/क्रियाओं में अविष्कारों की उपादेयता में वृद्धि करना, तथा (v) तकनीकी–सामाजिक परिवर्तन (Techno-social change) अर्थात् संस्थान ढांचे को तकनीकी प्रगति के अनुकूल बनाना।

तकनीकी परिवर्तन से तात्पर्य 'उत्पादन फलन' (Production Function) को इस प्रकार परिवर्तित करना है ताकि उसमें सभी ज्ञात तकनीकों का समावेश हो सके। किण्डलबर्जर के अनुसार तकनीकी परिवर्तन किसी उद्यम के वास्तविक उत्पादन फलन को इस तरह परिवर्तित कर देता है कि उन्हीं साधनों से अधिक उत्पादन या फिर कम साधनों से उत्पादन की उतनी ही मात्राा प्राप्त करना सम्भव होता है।

हर्बर्ट फ्रेकेल (Herbert Frankel) के अनुसार, '' तकनीकी परिवर्तन केवल तकनीकी ज्ञान में सुधार नहीं है बल्कि उससे अधिक है। तकनीकी परिवर्तन से पहले सामाजिक परिवर्तन होने चाहिए और समुदाय में अपनी सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक संस्थाओं को नई उत्पादन तकनीकों और आर्थिक क्रियाओं में तीव्र प्रगति के अनुरुप बनाया जा सके।''

तटस्थता के सम्बन्ध में हिक्स की धारणा

प्रो. हिक्स के अनुसार एक आविष्कार तब तटस्थ कहा जाता है जब वह श्रम तथा पूंजी की सीमान्त उत्पादकता की समान अनुपात में वृद्धि करता है।

एक तकनीकी परिवर्तन श्रम बचतकारी तब कहा जाता है जब यह एक स्थिर पूंजी–श्रम अनुपात पर श्रम की अपेक्षा पूंजी के सीमान्त उत्पादन को बढ़ा देता है।

हिक्स के तटस्थ तकनीकी परिवर्तन को चित्र में दो भिन्न उत्पादन फलनों की तुलना करते हुए प्रदर्शित किया गया है। चित्र में अनुलम्ब अक्ष पर प्रति व्यक्ति उत्पादन (q) को प्रदर्शित किया गया है ($q = \frac{Q}{L}$, जहां Q उत्पादन तथा L श्रम आगत है) तथा क्षैतिज– अक्ष पर पूंजी–श्रम अनुपात k को दर्शाया गया है। ($k = \frac{K}{L}$, जहां K तथा L भौतिक इकाइयों में पूंजी तथा श्रम आगत है) चित्र में OQ श्रमतथा पूंजी के सीमान्त उत्पाद को मापता है। OP तकनीकी परिवर्तन से पूर्व का उत्पादन फलन तथा OP_1 तकनीकी परिवर्तन के पश्चात का उत्पादन फलन है।

यदि उत्पादन फलन OP है तब स्पर्श रेखा QTA का ढाल पूंजी के सीमान्त उत्पादन को तथा OT श्रम के सीमान्त उत्पादन को मापता है। यह सिद्ध करने के लिए कि श्रम तथा पूंजी के सीमान्त उत्पादन के बीच के अनुपात OQ मापता है, हम त्रिभुज OTQ की लेते हैं चूंकि QT का ढाल पूंजी के सीमान्त उत्पादन को प्रदर्शित करता है जिसे यदि u द्वारा व्यक्त करें तब,

$$u = \frac{QT}{OQ}; \text{ या } OQ = \frac{OT}{u}$$

इस प्रकार OQ सीमान्त श्रम उत्पादन (OT) तथा सीमान्त पूंजी उत्पादन (u) के बीच अनुपात को मापता है।

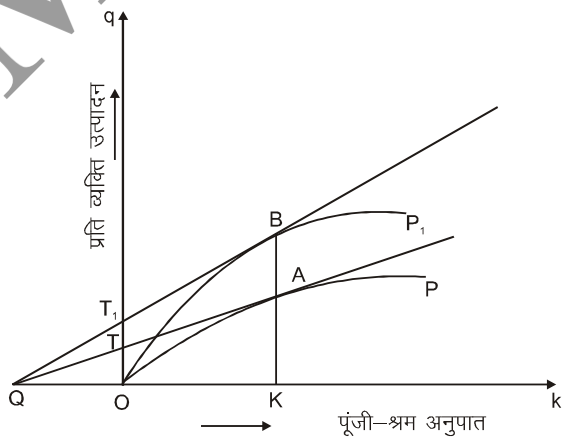

हिक्स का तटस्थ तकनीकी प्रगति परिवर्तन यह बताया है कि यदि तकनीकी परिवर्तन उत्पादन फलन को ऊपर की ओर OP से OP_1 ओर खिसका देता है तो दोनों सीमान्त उत्पादनों का अनुपात अवश्य ही क्षैतिज अक्ष से किसी भी अनुलम्ब रेखा पर ठीक वही होना चाहिए जैसा कि KB, जहां यह बिन्दु A तथा B पर क्रमशः उत्पादन फलनों के बिन्दुओं से होकर गुजरता है। इसके अतिरिक्त, हिक्स–तटस्थ तकनीकी प्रगति में यह भी शर्त है कि स्पर्श रेखा QB जो कि उच्चतर उत्पादन फलन OP_1 पर है अवश्य ही बिन्दु Q से जो कि O से बाईं ओर है, निकलनी चाहिए। जैसा कि स्पर्श रेखा QA तकनीकी परिवर्तन से पूर्व थी। चित्र 5 में उत्पादन फलन OP_1 पर स्पर्श रेखा QB बिन्दु Q से निकलती है। जब दोनों स्पर्श रेखाएं QA तथा QB बिन्दु Q से निकलकर उत्पादन फलनों OP तथा OP_1 पर स्पर्श करती हैं, केवल तभी सीमान्त श्रम उत्पादन तथा सीमान्त पूंजी उत्पादन के अनुपात समान होंगे। यथा सीमान्त श्रम उत्पादन तथा सीमान्त पूंजी उत्पादन तकनीकी परिवर्तन के बाद $\frac{OT_1}{u_1} = \frac{OT}{u}$ सीमान्त श्रम उत्पादन सीमान्त पूंजी उत्पादन तकनीकी परिवर्तन से पूर्व। अतः सीमान्त श्रम तथा पूंजी उत्पादनों के बीच अनुपात बिन्दु A तथा B पर अनुलम्ब रेखा KB पर समान है। इस प्रकार हिक्स-तटस्थ तकनीकी परिवर्तन समस्त उत्पादन फलन में परिवर्तन को प्रदर्शित करता है। इस स्थिति को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है :

$$Q = A(t) f(K, L)$$

जहां K तथा L क्रमशः श्रम तथा पूंजी को तथा Q कुल उत्पादन को प्रकट करते हैं। A (t) तकनीकी प्रगति का सूचक है जो दीर्घकाल में परिवर्तन के संचयी प्रभाव को मापता है तथा t का बढ़ता हुआ फलन है।

हिक्स-तटस्थता की उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर हम श्रम बचतकारी तथा पूंजी बचतकारी प्रगति का सूचक है जो दीर्घकाल में परिवर्तन के संचयी प्रभाव को मापता है तथा t का बढ़ता हुआ फलन है।

हिक्स-तटस्था की उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर हम श्रम बचतकारी तथा पूंजी बचतकारी तकनीकी परिवर्तनों को परिभाषित कर सकते हैं। जिसे जोन राबिन्सन ने पक्षपाती तकनीकी प्रगति (Biased Technical Progress) कहा है।

श्रम बचतकारी तकनीकी परिवर्तन (Labour-Saving Technical Change)–एक तकनीकी परिवर्तन तब श्रम बचतकारी होता है जबकि यह श्रम की अपेक्षा पूंजी के सीमान्त उत्पादन को एक स्थिर श्रम अनुपात पर बढ़ाता है। अर्थात, दिया गया उत्पादन अब पूंजी की अपेक्षा कम श्रम चाहता है। तकनीकी

परिवर्तन यह प्रकट करता है कि दिया गया उत्पादन श्रम तथा पूंजी की पहले से कम आगतों द्वारा उत्पादित किया जा सकता है जिससे परिवर्तन के पश्चात् समोत्पाद वक्र (Isoquant) (t_1) मूल समोत्पाद वक्र (t) के नीचे सरक जाता है।

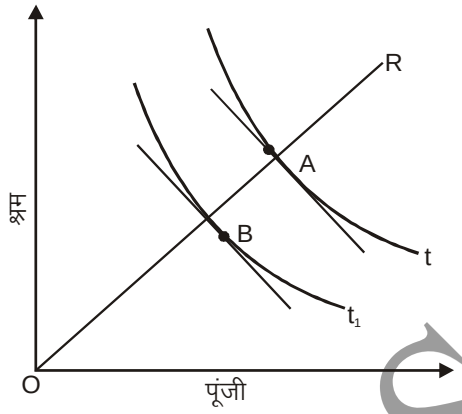

चित्र श्रम बचतकारी तकनीकी परिवत्रन को प्रकट करता है जबकि t तकनीकी प्रगति के पूर्व तथा t_1 तकनीकी प्रगति के पश्चात् का समोत्पाद वक्र है। समोत्पाद वक्र t_1 के बिन्दु B पर एक दिए गए पूंजी-श्रम अनुपात पर पूंजी की अपेक्षा कम श्रम चाहिए। इस प्रकार तक तकनीकी परिवर्तन अपेक्षाकृत श्रम-बचतकारी होता है। यदि लगाया श्रम पूर्णतया कम कर दिया जाए जो तकनीकी परिवर्तन पूर्णतया श्रम–बचतकारी और पूंजी उपयोगी होगा।

पूंजी–बचतकारी तकनीकी परिवर्तन – एक तकनीकी परिवर्तन पूंजी बचतकारी होगा यदि एक स्थिर पूंजी–श्रम अनुपात पर पूंजी की अपेक्षा श्रम का सीमांत उत्पादन बढ़ता है। अब एक दिए गए उत्पादन के लिए श्रम की अपेक्षा कम पूंजी की आवश्यकता होगी। इसे चित्र मे प्रदर्शित किया गया है। चित्र में समोत्पाद वक्र t_1 के बिन्दु B पर दिए गए पूंजी श्रम अनुपात के लिए, तकनीक परिवर्तन के पश्चात श्रम की अपेक्षा कम पूंजी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार श्रम की अपेक्षा कम पूंजी की आवश्यकता होती है इस प्रकार का तकनीकी परिवर्तन अपेक्षाकृत पूंजी बचतकारी होता है । यदि लगाई गई पूंजी को पूर्णतया कम कर दिया जाए तथा श्रम को बढ़ाया जाय, तो तकनीकी परिवर्तन पूर्णत : पूंजी बचतकारी तथा श्रम उपयोगी होगा।

VPM CLASSES

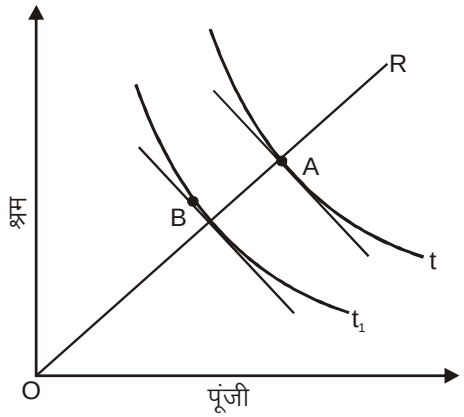

हिक्स में तटस्थ तकनीकी प्रगति सिद्धान्त के अन्तर्गत साधनों के हिस्से स्थिर रहतें हैं, यदि साधन अनुपात तथा श्रम और पूंजी के सापेक्ष पुरस्कार स्थिर रहतें हैं। इसे चित्र में दर्शाया गया हैं जहां इसका तात्पर्य यह है कि बिन्दु A तथा B के बीच यदि बिन्दु B पर OP_1 उत्पादन फलन की ढलान बिन्दु A पर उत्पादन फलन OP की ढलान की अपेक्षा अधिक है और ठीक उसी अनुपात में जिसमें कि उत्पादन KB, उत्पादन KA से अधिक है, तब तकनीकी उन्नति हिक्स तटस्थ है। इसका तात्पर्य यह है कि जब पूंजी की मात्रा परिवर्तित की जाती है तो पूंजी का सीमान्त उत्पाद (अथवा पूंजी की प्रति इकाई लाभांश की मात्रा) उसी अनुपात में बढ़ता है जिसमें कुल उत्पादन । अन्य शब्दों में, यदि तकनीकी प्रगति हिक्स –तटस्थ है तो A तथा B के बीच कुल उत्पादन का अनुपात जिसे लाभ तथा मजदूरी के रूप में भुगतान किया गया है। स्थिर रहता है। यह वह स्थिति भी जब श्रम तथा पूंजी के बीच प्रतिस्थापन की लोच इकाई के बराबर होती है।

हैरड का तटस्थ तकनीक प्रगति

सर रॉय हैरड ने अपनी पुस्तक Towards a Dynamic Economics में तटस्थ प्रगति की एक वैकल्पिक परिभाषा प्रस्तुत की है। उनकी परिभाषा पूंजी उत्पाद अनुपात पर आधारित है उनके अनुसार, तकनीकी प्रगति तब तटस्थ होती है जब लाभ की एक स्थिर दर (अथवा ब्याज दर) पर पूंजी– उत्पाद अनुपात भी स्थिर हो इस तरह हैरड की तटस्थ तकनीकी प्रगति के लिए लाभ की दर (r) तथा पूंजी–उत्पाद अनुपात (K/Y) दोनो की नियतता वांछनीय होती है।

यदि लाभ की दर तकनीकी प्रगति के पश्चात यथावत रहती है जबकि पूंजी–उत्पाद अनुपात बढ़ जाता है, तब तकनीकी प्रगति श्रम बचतकारी होती है दूसरी ओर, यदि एक स्थिर लाभ दर पर तकनीकी प्रगति के कारण पूंजी उत्पाद अनुपात घट जाता है तब तकनीकी प्रगति पूंजी बचतकारी होती है।

VPM CLASSES

हैरड की तटस्थ तकनीकी प्रगति को चित्र की सहायता से भी समझाया जा सकता है। चित्र में प्रति व्यक्ति पूंजी (k) को समान्तर अक्ष पर तथा प्रतिव्यक्ति उत्पादन (q) को अनुलम्ब अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। OP तकनीक परिवर्तन से पूर्व का उत्पादन फलन है जबकि OP_1 तकनीकी परिवर्तन के पश्चात का उत्पादन फलन है।

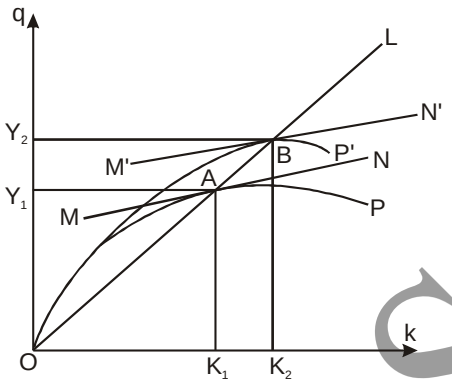

उत्पादन फलन OP के बिन्दु A पर पूंजी उत्पाद अनुपात OK_1/OY_1 है तथा उत्पादन फलन OP_1 के बिन्दु B पर OK_2/OY_2 है। चूंकि रेखा OL दोनों बिन्दुओं A तथा B में से गुजरती है इसलिए पूंजी–उत्पाद अनुपात इन बिन्दुओं A तथा B में से गुजरती है इसलीए पूंजी–उत्पाद अनुपात इन बिन्दुओं पर समान हैं,अर्थात् $OK_1/OY_1 = OK_2/OY_2$ ।

हैरड की तटस्थता के अनुसार तकनीकी प्रगति के पश्चात लाभ की दर एक स्थिर पूंजी–उत्पाद अनुपात के साथ–साथ निश्चित रूप में स्थिर बनी रहनी चाहिए। इसका तात्पर्य है कि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता (या लाभ की दर) उत्पादन फलन OP तथा OP_1 के बिन्दु A तथा उत्पादन फलन OP_1 के बिन्दु B के ढलान बिल्कुल बराबर हों। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ है कि बिन्दु A तथा B पर स्पर्श रेखांए निश्चित ही एक दूसरे के समान्तर हों। चित्र में A बिन्दु से होकर जाने वाली स्पर्श रेखा MN तथा बिन्दु B से होकर जाने वाली स्पर्श रेखा M´N´ समान्तर हैं। इस प्रकार हैरड–तटस्थ तकनीकी परिवर्तन जैसा कि उत्पादन फलन OP को ऊपर की और OP_1 पर सरकता हुआ दर्शाया गया है, क्रमशः बिन्दु A तथा B पर पूंजी उत्पादन को रेखा OL के माध्यम से समान दर्शाता है तथा स्पर्श रेखा A तथा B की ढलानों की समानता स्थिर लाभ दर को दर्शाता है।

इस तरह, हैरड की तटस्थ तकनीकी प्रगति की परिभाषा हिक्स की परिभाषा से अधिक उत्तम है, क्योंकि यह गत्यात्मक स्थिति पर लागू होती है न कि स्थैतिक स्थिति पर।

VPM CLASSES

हैरड के तटस्थ तकनीकी परिवर्तन में श्रम का सीधा सन्दर्भ नहीं है क्योंकि यह पूर्णतः पूंजी तथा उत्पादन के सम्बन्ध पर आधारित है। फिर भी, पूंजी–श्रम अनुपात तथा उत्पादन–श्रम अनुपात बिना तकनीकी प्रगति के भी, बदल सकते हैं, किन्तु एक स्थिर उत्पादन अनुपात के साथ, हैरड–तटस्थता तकनीकी प्रगति पूंजी–श्रम अनुपात को अपने आप नहीं बदल सकती, यद्यपि हैरड का तटस्थता नवप्रवर्तन सभी प्रकार की मशीनों के बनाने और संचालन में श्रमिकों की उत्पादकता को ठीक उसी अनुपात में बढ़ा सकता है जिसमें कि उन मशीनों की उत्पादकता को ठीक उसी अनुपात में बढ़ा सकता है जिसमें कि उन मशीनों का उत्पादन बढ़ता है।

हैरड तटस्थता का दूसरा सम्बन्ध राष्ट्रीय उत्पाद में साधन हिस्सों के वितरण से है। हैरड तटस्थता तकनीकी प्रगति के अन्तर्गत राष्ट्रीय उत्पाद में पूंजी और श्रम दोनों के हिस्से स्थिर होते हैं यदि लाभ की दर तथा पूंजी–उत्पादन अनुपात भी स्थिर हों जैसा कि चित्र में बिन्दु A तथा B पर दर्शाया गया है। हम यह भी कह सकते हैं कि जब श्रम तथा पूंजी एक वस्तु को उत्पादित कर रहे हैं तथा वहां हैरड–तटस्थता तकनीकी प्रगति है, तो यह दोनों की मजदूरी तथा लाभ को बढ़ाएगा, जो कि उत्पादन में वृद्धि के अनुपात के अनुसार होगा। इस सन्दर्भ में स्थिर पूंजी–उत्पादन अनुपात की मान्यता यह प्रकट करती है कि पूंजी–स्टॉक तथा श्रम शक्ति एक ही दर से वृद्धि करते हैं , तब पूंजीपतियों की आय उसी गति से बढ़ेगी जिस गति से श्रमिकों की मजदूरी बढ़ती है। यदि तकनीकी उन्नति हैरड के अनुसार पूंजी बचतकारी होगी, तो यह राष्ट्रीय उत्पाद में श्रमिकों के हिस्सों को घटायेगी और पूंजीपतियों के हिस्सों को बढ़ाएगी, ब्याज दर स्थिर होने पर । हैरड की तटस्थता को उत्पादन फलन के रूप में इस प्रकार दर्शाया जा सकता है:

$$Q = f [K, A (t) L]$$

यहां Q फलन (f) है K तथा A (t) जिसका अर्थ है कि एक हुए पैमाने के स्थिर प्रतिफलों पर पूंजी (K) तथा प्रभावी श्रम इकाइयों [A(t) L] में समानुपातिक वृद्धि, राष्ट्रीय उत्पाद (Q) में समानुपातिक वृद्धि अवश्य लाएंगी। ब्याज दर के स्थिर होने पर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में श्रम की कार्यकुशलत बढ़ती है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ काम में लगें हुए व्यक्तियों में वृद्धि है, हैरड–तटस्थ तकनीकी उन्नति द्वारा प्रत्येक व्यक्ति जो कार्य कर सकता है उसकी मात्रा बढ़ती है। इसका परिणाम यह होता है। कि जनसंख्या की वृद्धि तथा हैरड–तटस्थ तकनीकी उत्रति दोनों के द्वारा GNP एक दी गई दर पर बढ़ती है। अर्थशास्त्रियों ने जोन रॉबिन्सन के विश्लेषण के आधार पर यह प्रकट कि तकनीकी प्रगति हिक्स–तटस्थता और हैरड तटस्थता दोनों ही है। यदि पूंजी तथा श्रम के बीच प्रतिस्थापन की लोच

इकाई है तथा आय वितरण में कोई परिवर्तन नहीं है। हिक्स के दृष्टिकोण में यदि दी गई श्रम शक्ति से पूंजी अपरिवर्तित रहती है तथा यह हैरड–तटस्थ है यदि दी गई श्रम शक्ति के साथ पूंजी उसी अनुपात में बढ़ती है जिस अनुपात में राष्ट्रीय उत्पाद तथा आय का वितरण वहीं रहता है।

करने से जानकारी (कौशल अर्जन)

यह सर्वज्ञात तथ्य है कि जानकारी और कौशल अर्जन कार्य अनुभव से प्राप्त होता है। किसी वस्तु विशेष के उत्पादन से सम्बन्धित कार्य के करने से प्राप्त जानकारी एंव अनुभव क आधार पर उस वस्तु के उत्पादन की दक्षता तथा उत्पादकता के स्तर को बढ़ाया जा सकता है। श्रमिक, प्रबन्ध, उद्यमी, व्यावसायी एवं पूंजी के स्वामी अनुभव एंव कौशल अर्जन के फलस्परूप अपने उत्पाद की लागत घटाकर उत्पादन एंव उत्पादकता में वृद्धि कर अधिकतम लाभ प्राप्ति में सकारात्मक भूमिका निभाते है। अपने 'श्रम विभाजन' के विचार की विवेचना करते समय एडम स्मिथ ने जानकारी एवं कौशल अर्जन की प्रक्रिया के महत्व को स्पष्ट किया है। असमावेशित तकनीकी प्रगति में अनुभव से प्राप्त ज्ञान एक बाह्यजात तत्व है। असमावेशित तकनीकी प्रगति विशुद्ध रूप से संगठनात्मक होती है। जिसमें आगतों में परिवर्तन किए बिना तथा बिना किसी नवीन निवेश के अधिक उत्पादक किया जाता है। यह सब अनुभव से प्राप्त कौशल के आधार पर ही होता है।

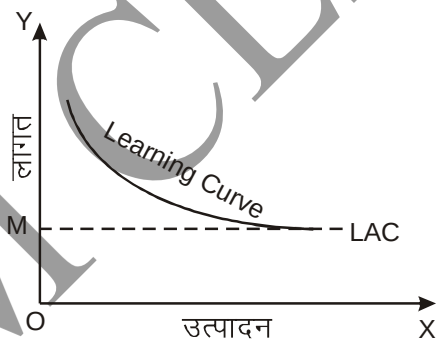

जानकारी अनुभव से प्राप्त होती है। यदि इस सम्बन्ध में अनुभव को उत्पादित वस्तु कर मात्रा से मापा जाता है, तो जितना अधिक उत्पादन होगा, प्रति इकाई लागम उतनी ही कम होगी। जानकारी के परिणाम बढ़ते हुए प्रतिफल की तरह होते है। जानकारी होने से उत्पादकता की दर बढ़ जाती है। जब फर्में नई वस्तुएं उत्पादित करना प्रारम्भ करती हैं, तो 'करने से जानकारी' का अंगीकार करती है। जब वे पहली इकाई उत्पादित कर लेती है ता अनुभव एवं जानकारी के आधार पर समय एंव लागतो को कम करने का प्रयास करती है। वस्तु बनाने के साथ–साथ बढ़ रहे अनुीाव से लागतें गिरती जाती है जब इसकी अधिक से अधिक मात्रा उत्पादित की जाती है। जब फर्म जानकारी की सभी सम्भवनाओं का

उपयोग कर लेती है, तो लागतें न्यूनतम स्तर M पर पहुंच जाती है। जैसा कि उपर्युक्त चित्र मे दिखाया गया है। इस तरह करने से जानकारी के आधार पर दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का अनुमान लगाया जा सकता हैं।

विकास मॉडल

फाई–रेनिस का विकास मॉडल

सामान्य परिचय : लुइस का असीमित श्रम पूर्ति का सिद्धान्त कृषि क्षेत्र के विकास का सन्तोषजनक विश्लेषण प्रस्तुत करने में विफल रहा। इस समस्या के समाधान हेतु **जॉन सी. एच. फाई** तथा **जी. रेनिस** आगे आए और अपने लेख *'The Theory of Economic Development'* के माध्यम से लुइस के सिद्धान्त में व्याप्त कमियों को सुधारने का प्रयास किया। उन दोनों ने अपने विश्लेषण में यह स्पष्ट किया है कि संक्रमण प्रक्रिया में एक विकासशील अर्थव्यवस्था गतिहीनता की स्थिति से आत्मजनित वृद्धि की ओर जाने का प्रयास करती है। लुइस क मॉडल की ही भांति फाई–रेनिस भी श्रम अतिरेक वाली अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की कल्पना करते है। दोहरी अर्थव्यवस्था में जहां प्रमुख व्यवसाय कृषि के साथ–साथ उद्योगों का भी अस्तित्व विद्यमान रहता है, जैसे–जैसे आर्थिक विकास होता जाता है, औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन तथा रोज़गार की मात्रा बढ़ती जाती है तथा आर्थिक विकास की समस्याओं का केन्द्र बिन्दु धीरे–धीरे कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर गतिशील होता है।

फाई–रेनिस का सिद्धान्त :

फाई–रेनिस का सिद्धान्त एक अल्पविकसित श्रम–अतिरेक अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है जिसमें जनसंख्या का एक बड़ा भाग पारम्परिक व्यवसाय कृषि क्षेत्र में कार्यरत है। यह कृषि अर्थव्यवस्था पिछड़ी तथा गतिहीन है। निःसन्देह अर्थव्यवस्था में गैर–कृषि क्षेत्र का भी अस्तित्व है परन्तु उसमें पूंजी विनियोग की मात्रा सीमित है।

विकास की प्रक्रिया में अतिरेक कृषि श्रमिकों का, जिनका कृषि उत्पादन में योगदान शून्य अथवा नगण्य होता है, का पुनर्वितरण औद्योगिक क्षेत्र की ओर होता है। कृषि क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र की तरह उत्पादक तभी कहा जाएगा जब कृषि क्षेत्र में मजदूरी संस्थागत मजदूरी के समतुल्य हो जाएगी।

मान्यताएँ –

- इस मॉडल में दोहरी अर्थव्यवस्था की कल्पना की गई है जिसका एक भाग सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र है तथा दूसरा भाग परम्परागत तथा गतिहीन कृषि क्षेत्र है।

- भूमि का पूर्ति स्थिर है।
- जनसंख्या वृद्धि एक बहिर्जात तत्व है।
- कृषि क्षेत्र का उत्पादन केवल भूमि तथा श्रम का फलन है।
- भूमि के सुधार के अतिरिक्त कृषि में पूंजी का संचय नहीं होता।
- औद्योगिक क्षेत्र का उत्पादन केवल श्रम तथा पूंजी का फलन हैं। उत्पादन के साधन के रूप में भूमि की कोई भूमिका नही है।
- दोनों क्षेत्रों के श्रमिक केवल कृषि वस्तुओं का उपयोग करते है।
- औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी स्थिर होती है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर फाई तथा रेनिस श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास को निम्न तीन अवस्थाओं में प्रस्तुत करते है –

प्रथम अवस्था में अदृश्य बेरोजगार श्रमिकों को जो कृषि उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं करते, सहजता से संस्थागत मजदूरी दर पर औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

द्वितीय अवस्था में कृषि श्रमिक जो कृषि उत्पादन में वृद्धि तो करते है परन्तु उस संस्थागत मजदूरी से कम उत्पादन करते हे जो वे प्राप्त करते है। इस तरह के श्रमिकों को भी औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

तृतीय अवस्था – यदि श्रमिकों का औद्योगिक क्षेत्र में इसी तरह निरन्तर स्थानान्तरण किया जाता है तो अन्ततः एक ऐसी स्थिति आती है जब कृषक श्रमिक संस्थागत मजदूरी के बराबर उत्पादन करने लगते है। इसी से तृतीय अवस्था का प्रारम्भ होता है, यह उत्कर्ष की अन्तिम स्थिति तथा आत्मजनक वृद्धि का प्रारम्भ है। इस अवस्था में कृषि श्रमिक संस्थागत मजदूरी से अधिक उत्पादन करने लगते है। अन्य शब्दों में इस अवस्था में श्रम अतिरेक समाप्त हो जाता है तथा कृषि का व्यापारीकरण हो जाता है।

उपर्युक्त अवधारणाओं के स्पष्टीकरण हेतु फाई–रेनिस ने कृषि विकास का जो मॉडल प्रस्तुत किया है उसकी विवेचना निम्नवत् की जा सकती है –

कृषि क्षेत्र का विकास :

कृषि क्षेत्र जनाधिक्य की समस्या से ग्रसित होता है जिसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में अल्परोजगार, प्रच्छन्न बेरोजगारी, अर्थात् श्रम अतिरेक की स्थिति पाई जाती है। जनसंख्या के लगातार बढ़ते दबाव से कृषि क्षेत्र में भूमि–श्रम अनुपात घटता जा रहा है। उत्पादन तकनीक की स्थिर दशाओं के अन्तर्गत,

भूमि पर सघन कृषि किए जाने के फलस्वरूप कृषि उत्पादन घटती दर से बढ़ता है अर्थात् कृषि में उत्पत्ति ह्रास का नियम लागू होता है।

कृषि क्षेत्र में उत्पादन की दशाओं को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है :

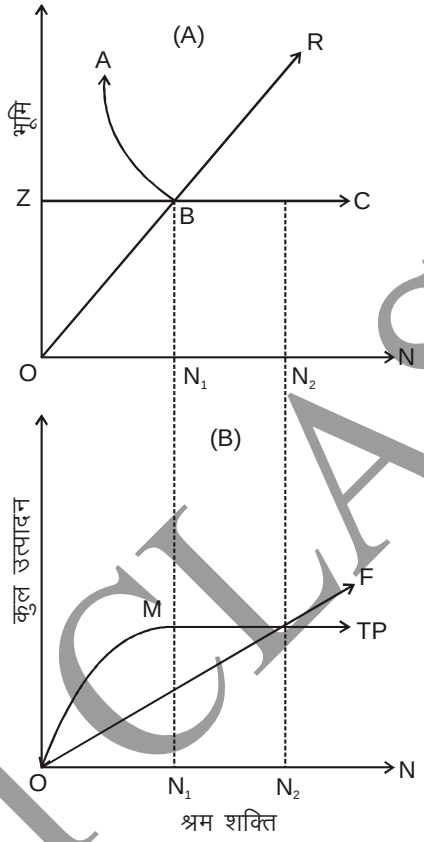

चित्र 1

चित्र (A) में कृषि प्रक्रिया को प्रदर्शित किया गया है जहां श्रम (N) तथा भूमि (Z) द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। चित्र में श्रम को क्षैतिज अक्ष पर तथा भूमि को अनुलम्ब अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है। रेखा OR उत्पादन की अवस्था दर्शाती है। रेखा ABC कृषि वस्तुओं के उत्पादन की सीमा को व्यक्त करती है। भूमि की स्थिर मात्रा OZ पर श्रम की ON_1 इकाई द्वारा अधिकतम उत्पादन किया जाता है। चित्र 1 (B) में TP वक्र श्रम की कुल उत्पादकता को दर्शाता है। यदि भूमि की OZ इकाई पर श्रम की ON_1 से अधिक मात्रा लगाई जाती है तब उत्पादन में कोई वृद्धि नही होगी क्योकि वक्र TP बिन्दु M के उपरान्त क्षैतिज हो जाता है। यदि यह मान लिया जाए कि कृषि क्षेत्र में लगी कुल श्रम शक्ति ON_2 है तथा ON_1 श्रमिक ही उत्पादन को अधिकतम बनाने के लिए पर्याप्त है, तब श्रमिकों

VPM CLASSES

की N_1N_2 संख्या उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं डालती है और उनका सीमान्त भौतिक उत्पादन M बिन्दु से उपरान्त शून्य हो जाता है। अन्य शब्दों में, N_1N_2 श्रमिक अदृश्य रूप से बेरोजगार है।

इन श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में तीन अवस्थाओं में स्थानान्तरित कर दिए जाने पर आर्थिक विकास होता है। इस स्थिति को चित्र 2 (A), (B) तथा (C) द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में (A) औद्योगिक क्षेत्र को तथा (B) और (C) भाग कृषि क्षेत्र को दर्शाते है। सर्वप्रथम हम भाग (C) पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। यहां पर श्रम शक्ति को दाएं से बाएं और क्षैतिज अक्ष ON पर तथा कृषि उत्पादन को O से नीचे की ओर अनुलम्ब अक्ष OY पर प्रदर्शित किया गया है। वक्र OCX कृषि क्षेत्र की कुल भौतिक उत्पादकता का वक्र (TPP) है। CX का समानान्तर भाग यह प्रदर्शित करता है कि इस क्षेत्र में कुल उत्पादकता स्थिर है। इस तरह, MN श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य है। अतः MN अतिरेक श्रम है जिसे औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित कर देने से कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा। यद्यपि यह मान लिया जाता है कि सम्पूर्ण श्रम शक्ति ON कृषि क्षेत्र में लगी हुई तब यह कृषि उत्पादों का उत्पादन करती है। यह मानते हुए कि कुल उत्पादन NX कुल श्रम शक्ति ON द्वारा उपभोग कर लिया जाता है तब वास्तविक मजदूरी NX/ON अथवा रेखा OX की ढाल (slope) है। यह संस्थागत मजदूरी है।

प्रथम अवस्था में, NM श्रमिक अदृश्य बेरोजगार है क्योंकि उनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य है। इसे भाग (B) में NMRU वक्र के अंश NM अथवा TPP वक्र के अंश CX द्वारा भाग (C) में दर्शाया गया है। अतिरिक्त श्रम शक्ति NM जिसे भाग (A) के OM में दर्शाया गया है, उसी संस्थागत मजदूरी OW (= NW) पर स्थानान्तरिक की गई है।

द्वितीय अवस्था में, MPP वक्र NMRU पर MK कृषि श्रमिकों की सीमान्त भौतिकता MR सीमा तक धनात्मक है परन्तु यह संस्थागत मजदूरी KR (=NW) जो वे प्राप्त करते है उससे कम है जैसा कि भाग (B) में दर्शाया गया है। इसलिए वे कुछ सीमा तक अदृश्य बेरोजगार है जिनको औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित किया जा सकता है, किन्तु इस अवस्था में सामान्य मजदूरी औद्योगिक क्षेत्र में संस्थागत मजदूरी के बराबर नही होगी। इसका कारण यह है कि श्रम के औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित किए जाने से कृषि उत्पादन कम हो जाता है। परिणामस्वरूप कृषि वस्तुओं की कमी हो जाती है जिससे औद्योगिक वस्तुओं की तुलना मे कमी हो जाती है जिससे औद्योगिक वस्तुओं की तुलना में उनकी कीमतें बढ़ जाती है। सामान्य मजदूरी OW से LH तथा KQ तक संस्थागत मजदूरी से अधिक बढ़ जाती है। यह श्रम के पूर्ति वक्र WT से H तथा Q से ऊपर W_1 तक भाग (A) में प्रदर्शित किया गया है जब

ML तथा LK श्रमिक धीरे–धीरे औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित हो जाते है। T से ऊपर की ओर श्रम के पूर्ति वक्र WTW_1 पर गति ही **लुइस का मोड़ बिन्दु** है।

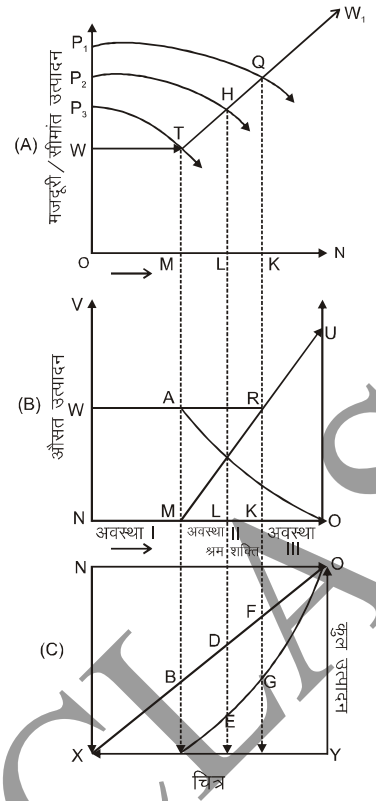

चित्र

तृतीय अवस्था में कृषि श्रमिक कृषि उत्पाद को संस्थागत मजदूरी के बराबर उत्पादित करना प्रारम्भ कर देते है और अन्ततः संस्थागत मजदूरी से अधिक प्राप्त होने लगते है। यह आत्मस्फूर्ति की स्थिति का अन्त तथा आत्मजनक वृद्धि का प्रारम्भ है। यह भाग (B) मे वक्र MPP के बढ़ते हुए भाग RU से प्रदर्शित किया गया है जो संस्थागत मजदूरी KR (=NW) से अधिक है। परिणामस्वरूप KO श्रम को चित्र के भाग (A) में KQ से ऊपर उठती हुई सामान्य मजदूरी पर कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाएगा। यह कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम को समाप्त करता है जिसका पूरी तरह व्यापारीकरण हो जाता है। इस अतिरेक श्रम की समाप्ति को श्रम शक्ति की भौतिक कमी की अपेक्षा मुख्यतया बाजार का तत्व माना जाना चाहिए। यह पूर्ति के स्त्रोत पर वास्तविक मजदूरी में वृद्धि द्वारा व्यक्त किया जाता है।

फाई तथा रेनिस प्रथम तथा द्वितीय अवस्था के बीच की सीमा को **'दुर्लभता बिन्दु'** कहते है क्योकि इस अवस्था की उत्पत्ति कृषि–श्रमिक के समाप्त हो जाने के कारण होती है। वास्तव में इसी बिन्दु को लुइस मॉडल में लुइस टर्निंग प्वाइण्ट कहा गया है। द्वितीय अवस्था तथा द्वितीय अवस्था के बीच की

VPM CLASSES

सीमा **'व्यापारीकरण' बिन्दु'** है जो कृषि में संस्थागत मजदूरी तथा MPP के बीच समानता के प्रारम्भ को प्रकट करता है। फाई–रेनिस के अनुसार 'व्यापारीकरण बिन्दु' विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण अवस्था है। व्यापारीकरण बिन्दु पर औद्योगिक मजदूरी की वृद्धि तीव्र होती है।

फाई तथा रेनिस स्पष्ट करते है कि यदि कृषि उत्पादकता बढ़ती है तो दुर्लभता बिन्दु तथा व्यापारीकरण बिन्दु मिल जाते है। ऐसा इसलिए होता है कि कृषि की उत्पादकता की वृद्धि के कारण MPP में वृद्धि उत्पादन को संस्थागत मजदूरी के स्तर तक अधिक शीघ्रता से बढ़ने के योग्य बनाती है। चित्र 2 (B) में इसे MRU वक्र के ऊपर बाईं तरफ स्थानान्तरित होते समझा जा सकता है। दूसरी ओर कुल भौतिक उत्पादकता में वृद्धि के साथ AAS में भी वृद्धि होती है। इसका तात्पर्य यह है कि चित्र 2 (B) में MRU तथा ASO वक्र ऊपर की ओर इस प्रकार से स्थानान्तरित हो जाएंगे कि दुर्लभता बिन्दु (A) तथा व्यापारीकरण बिन्दु R मिल जाएंगे तथा द्वितीय अवस्था समाप्त हो जाएगी। जहां तक औद्योगिक क्षेत्र का प्रश्न है, कृषि उत्पादकता की वृद्धि का प्रभाव यह होता है कि मोड़ बिन्दु के पश्चात औद्योगिक पूर्ति वक्र को ऊपर उठा देगी। चित्र 2 (A) में इसे WTW_1 के नीचे दाईं ओर बिन्दु T के नीचे दिखाया जा सकता है।

फाई तथा रेनिस के अनुसार, द्वितीय अवस्था के समाप्त होने का आर्थिक महत्व यह है कि यह अर्थव्यवस्था को आत्मजनक वृद्धि में सरलता से चलने की योग्यता प्रदान करती है। इसके साथ ही फाई रेनिस ने अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास की कल्पना की है जिसके अन्तर्गत कृषि तथा औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में एक साथ निवेश किया जाना आवश्यक है। जब काल पर्यन्त निवेश कोष दोनों क्षेत्रों को लगातार आबंटित किए जात है तब अर्थव्यवस्था सन्तुलित वृद्धि पथ पर चल पड़ती हैं। यद्यपि यह सम्भावना भी विद्यमान रहती है कि कुछ उत्पन्न परिस्थितियां वास्तविक वृद्धि पथ को सन्तुलित पथ से विचलित कर दे फिर भी आर्थिक शक्तियां कुछ इस तरह समन्वित होती है कि वास्तविक वृद्धि सन्तुलित वृद्धि पथ के इर्द–गिर्द ही घूमती है।

विकास का निर्भरतापरक सिद्धान्त

विकास के निर्भरतापरक सिद्धान्त का प्रतिपादन 1960 के दशक के अन्तिम वर्षो तथा 1970 के दशक के प्रारम्भिक वर्षो में लैटिन अमेरिकी देशों के सन्दर्भ में किया गया। इस सिद्धान्त का विकास ढांचावादी/मार्क्सवादी/नव–मार्क्सवादी ढांचे के अन्तर्गत हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार अल्पविकसित देशों के पिछड़ेपन के लिए पश्चिम के पूंजीवादी देश उत्तरदायी है जिनमें से अधिकांश 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में शक्तिशाली साम्राज्यवादी राष्ट्र थे। सिद्धान्त के विवेचकों का तर्क है कि अल्पविकसित देशों

का जो अपर्याप्त विकास हुआ अथवा उनके विकास में जो विकार उत्पन्न हूआ उसका प्रमुख कारण इन साम्राज्यवादी राष्ट्रों की उपनिवेशवादी नीति थी। इसके अतिरिक्त इन विचारकों ने अल्पविकसित देशों के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का भी उल्लेख किया है जो इन देशों की आर्थिक प्रगति में बाधक रहे। इन लोगों का तर्क है कि इन्हीं कारकों ने यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका के आर्थिक विकास में सक्रिय भूमिका निभाई, जबकि अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमेरिका के विकास के पीछे ढकेल दिया। पहले ये अल्पविकसित देश इन विकसित साम्राज्यवादी देशों के उपनिवेश थे और इनके शोषण के शिकार थे। इन देशों की सोची–समझी शोषणकारी नीतियों के फलस्वरूप ही ये अल्पविकसित देश अल्पविकसित एवं पिछड़े बने रहे। इन देशों की अर्थव्यवस्था औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था थी। शासित देश शासक देश के लिए कच्चे माल के स्त्रोत तथा इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं की बिक्री के प्रमुख बाजार थे। ये उपनिवेशवादी देश अपने शासित देशों के परम्परागत उद्योगों को जानबूझकर नष्ट करने की नीति अपनाते थे।

इस तरह, पूर्व में अल्पविकसित देशों का पिछड़ापन साम्राज्यवादी देशों की पूर्व नियोजित शोषणकारी नीति का परिणाम था। वर्तमान में भी अल्पविकसित देश निर्मित वस्तुओं, मध्यवर्ती वस्तुओं, मशीनरी तथा प्रौद्योगिकी के लिए पश्चिमी देशों पर ही निर्भर करते है। इस तरह इन अल्पविकसित देशों का विकास अभी भी विकसित देशों पर ही निर्भर करता है। अन्य शब्दों में, पुराना शोषण नए रूप में विद्यमान है। निष्कर्ष रूप में, विश्व आर्थिक प्रणाली पूंजीवादी विकसित देशों के हित सम्बर्द्धन की पोषक है जिसके फलस्वरूप अल्पविकसित देश अभी भी पिछड़े हुए है और अपने विकास के लिए विकसित देशों पर निर्भर करते है। **ए.जी. फ्रैंक** के अनुसार विकास एवं अल्पविकास एक ही सिक्के के दो पहलू है। वैश्विक प्रणाली की ऐसी ही रीति है कि एक व्यवस्था का विकास दूसरे के विकास की कीमत पर होता है।

जनसंख्या तथा आर्थिक विकास

जनसंख्या वृद्धि का विकसित एवं अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्था पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है। विकसित देशों में चूंकि पूंजी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है तथा श्रम की दुर्लभता होती है। इसलिए जनसंख्या वृद्धि ऐसे देशों की अर्थव्यवस्थाओं के विकास में सहायक हुई है। लेकिन अल्पविकसित देश गरीब, पूंजी दुर्लभ तथा श्रम प्रचुर होते है। जनसंख्या में वृद्धि इनके आर्थिक विकास पर निम्न तरीकों से कुप्रभाव डालती है।

1. **जनसंख्या तथा प्रति व्यक्ति आय :** जनसंख्या वृद्धि का प्रति व्यक्ति आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण राष्ट्रीय उत्पादन में होने वाली प्रत्येक वृद्धि के साथ–साथ उपभोक्ताओं की संख्या भी बढ़ती जाती है। जनसंख्या में बच्चों की बड़ी संख्या से अर्थव्यवस्था पर भी भारी बोझ पड़ता है क्योंकि ये बच्चे केवल उपभोग करते है और राष्ट्रीय उत्पादन में कुछ भी योगदान नहीं करते।

2. **जनसंख्या तथा कृषि विकास :** जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ जाता है जिससे छिपी हुई बेरोजगारी में वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप प्रतिव्यक्ति आय और भी घट जाती है। प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर बचत तथा निवेश की प्रवृत्ति को घटा देती है। परिणामस्वरूप भूमि पर उन्नत तकनीकों तथा अन्य सुधारों का प्रयोग नहीं हो पाता। कृषि में पूंजी निर्माण की प्रक्रिया को धक्का पहुंचता है और अर्थव्यवस्था निर्वाह स्तरीय दलदल में फंस जाती है।

3. **जनसंख्या तथा पूंजी निर्माण :** जनसंख्या में वृद्धि से पूंजी–निर्माण की गति धीमी पड़ जाती है। जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ती है खाद्य पदार्थो, आवास, वस्त्रों आदि की मांग भी बढ़ती चली जाती है जिसे पूरा करने के लिए इनके उत्पादन को बढ़ाना पड़ता है। इस प्रकार जब लोगों की अनिवार्य आवश्कताओं को पूरा करने के लिए सरकारी साधनों को उनके उत्पादक प्रयोगों से हटाकर चालू प्रयोगों में लगाया जाता है तो पूंजी निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

4. **जनसंख्या तथा रोजगार :** तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या अर्थव्यवस्था को सामूहिक बेरोजगारी तथा अल्प बेरोजगारी में धकेल देती है। जब जनसंख्या में बढ़ोतरी होती है तो कुल जनसंख्या में श्रमिकों का अनुपात बढ़ता है। लेकिन पूरक साधनों के अभाव में रोजगार के अवसर को बढ़ाना सम्भव नहीं होता। परिणाम यह होता है कि निरपेक्ष तथा सापेक्ष दोनों रूप से बेरोजगारी बढ़ जाती है।

व्यापार एवं विकास

दोहरा अन्तराल विश्लेषण :

चेनरी तथा अन्य लेखकों ने आर्थिक विकास के दो अथवा द्वैत या दोहरे अन्तरालों की धारणा को विकसित किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने मत व्यक्त किया है कि 'बचत अन्तराल' तथा 'विदेशी विनिमय अन्तराल' अल्पविकसित देशों में वृद्धि की लक्ष्य दर प्राप्त करने के दो भिन्न–भिन्न तथा स्वतन्त्र गतिरोध है। अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को प्राप्त करने के लिए चेनरी विदेशी सहायता को इन दोनों अन्तरालों की पूर्ति करने का माध्यम समझता है। उसने अन्तरालों के आकारों की संगणना करने के लिए एक दिए हुए पूंजी–उत्पाद के साथ अर्थव्यवस्था की एक लक्ष्य वृद्धि–दर की परिकल्पना की है। लक्ष्य की प्राप्ति

के लिए जब घरेलू बचत दर निवेश से कम होती है तो एक बचत अन्तराल उत्पन्न हो जाता है। अर्थव्यवस्था विदेशी सहायता को प्राप्त करके बचत अन्तराल की पूर्ति कर सकती है तथा इस लक्ष्य वृद्धि दर को प्राप्त कर सकती है। इसी प्रकार, लक्षित विदेशी विनिमय आवश्यकताओं तथा शुद्ध निर्यात अर्जनों के बीच एक स्थिर सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। यदि शुद्ध निर्यात अर्जन विदेशी विनिमय आवश्यकताओं से कम पड़ते है तो एक विदेशी विनिमय अन्तराल उत्पन्न होता है जिसे विदेशी सहायता से भरा जा सकता है।

इन दोनों अन्तरालों को निम्नलिखित राष्ट्रीय आय लेखांकन समीकरण के आधार समझाया जा सकता है –

$$E - Y \equiv I - S \equiv M - X \equiv F$$

यहां E राष्ट्रीय व्यय है, Y राष्ट्रीय उत्पादन तथा आय है, I निवेश है, S बचत है, M आयात, X निर्यात है तथा F शुद्ध पूंजी अन्तर्वाह है।

(I–S) घरेलू बचत है तथा (M–X) विदेशी विनिमय अन्तराल है। मूल राष्ट्रीय आय के लेखांकन समीकरण की ही भांति ये दोनों अन्तराल किसी दिए गए लेखांकन समय में सदैव वास्तविकता में समान होते है। अतः आयोजन प्रक्रिया के दौरान बचतकर्ताओं, निवेशकों, आयातकर्ताओं तथा निर्यातकर्ताओं की योजनाओं के भिन्न–भिन्न होने की सम्भावनाएं विद्यमान रहती है। प्रत्याशित अथवा आयोजित निवेश का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था की लक्ष्य वृद्धि–दर से होता है। यदि लक्ष्य वृद्धि–दर ऊंची है तो निवेश भी ऊंचे होंगे। किन्तु समाज में पूंजी के स्तर तथा वितरण पर घरेलू बचत पर आधारित होती है।

निर्यात बर्हिजात रूप में विश्व कीमतों तथा मात्राओं जो कि मौसम अथवा प्राकृतिक परिस्थितियों से बदलती है, के द्वारा निर्धारित किए जाते है। चूंकि ये तत्व एक–दूसरे से अपने आप में स्वतन्त्र माने जाते हैं अतः बचत अन्तराल और विदेशी विनिमय अन्तराल प्रत्याशित रूप में आकार में असमान होते है। यह भी मान्यता है कि बचत तथा विदेशी विनिमय को एक–दूसरे के साथ स्थानापन्न नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त देश अपनी संभावित बचतों को निर्यात में नही बदल सकता।

प्रेविश, सिंगर एवं मिर्ड के विचार :

परिचय – प्रतिष्ठित एवं नव–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को आर्थिक विकास का इन्जन मानते हैं। प्रतिष्ठित एवं नव–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विश्वास है कि किसी देश के विकास में विदेशी व्यापार महत्वमपूर्ण योगदान दे सकता है। **हैबरलर** एवं **केयरक्रास** जैसे अर्थशास्त्रियों ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए विचार व्यक्त किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केवल उत्पादन को कुशलतम बनाने

का ही उपया नहीं वरन् विकास का इन्जन भी है। किसी भी देश के व्यापार की मात्रा एवं संरचना, व्यापार की शर्तें और अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान–ये तीनों मिलकर उसके विकास को प्रभावित करते है।

किन्तु अर्थशास्त्रियों का दूसरा वर्ग राउल प्रोबिश, मिण्ट, गुन्नार मिर्डल, सिंगर जैसे अर्थशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को आर्थिक विकास का अवरोधक घटक मानते हैं। इन अर्थशास्त्रीयों का मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का इन देशों के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव होता है।

प्रो. मिर्डल ने यह मत व्यक्त किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने अल्प–विकसित देशों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के बजाय उनमें दोहरी अर्थव्यवस्था उत्पन्न की है। अल्पविकसित देशों में दोहरी अर्थव्यवस्था उत्पन्न होने के दो प्रमुख कारण हैं– **प्रथम**, इन देशों की संरचना एवं परिस्थिति के कारण इन देशों में विकास प्रक्रिया का **प्रतिधावन प्रभाव** उसके **प्रसरण प्रभाव** से अधिक शक्तिशाली होता है जिससे क्षेत्रीय एवं अर्न्राष्ट्रीय असमानताएं बढ़ती हैं; **दूसरे,** इन देशों में भुगतान सन्तुलन के प्रतिकूल होने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

अर्न्राष्ट्रीय व्यापार का आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव :

अर्द्ध–विकसित देशों के आर्थिक विकास में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने सहायता पहुंचाई है, इसके समर्थन में निम्न तर्क दिये जाते हैं:

1. **वास्तविक आय और पूंजी निर्माण में वृद्धि** – अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्तर्गत एक देश उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण करता है जिसमें उसे तुलनात्मक लाभ होता है जिसके फलस्वरूप उसकी वास्तविक आय में वृद्धि होती है। अन्तर्राष्ट्रय व्यापार का प्रभाव यह होता है कि देश में जो उत्पत्ति के साधन तथा उत्पादन तकनीक पहले से निश्चित रहती है उनमें परिवर्तन होकर साधनों का वितरण अनुकूलतम हो जाता है अर्थात् उत्पादन अधिक कुशलतापूर्वक होने लगता है।
2. **निर्यात क्षेत्र से होने वाला विकास** – किसी भी देश में उत्पत्ति के समस्त क्षेत्रों में एकसमान विकास नहीं होता वरन् कुछ क्षेत्र महत्वपूर्ण होते हैं जिनसे पहले विकास होता है तथा ये क्षेत्र अन्य उद्योगों को गति प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से गति प्रदान करने में निर्यात क्षेत्र की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है जो निम्न तीन तत्वों से स्पष्ट है:

(i) **विस्तृत बाजार** – विदेशों में मांग वृद्धि के कारण देश की विभिन्न वस्तुओं का **बाजार विस्तृत** होता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने स्पष्ट किया था कि जो देश विदेशों में अपना माल बेचने में सफल होता है वह द्रुत गति से विकास कर सकता है। इससे बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं तथा विभिन्न उद्योगों पर इसका विकासात्मक प्रभाव पड़ता है।

(ii) **निर्यात उद्योगों का विकास** – देश के भीतर बिना सामाजिक पूंजी का विनियोग किये, निर्यातों का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

(iii) **मांग में वृद्धि** – निर्यातों के कारण अन्य क्षेत्रों में प्रभावपूर्ण मांग का जन्म होता है जिससे विभिन्न वस्तुओं की मांग बढ़ती है। **लुईस** का मत है कि उत्पत्ति के साधनों के लिए घरेलू और निर्यात उद्योगों में प्रतियोगिता होती है जिससे देश के अन्य उद्योग भी नव–परिवर्तन अपनाते हैं। इससे उत्पादन में वृद्धि होती है।

3. **आयातों से देश का आर्थिक विकास** – अर्द्ध–विकसित देशों को उद्योगों की स्थापना एवं तकनीकी विकास के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, वे पर्याप्त मात्रा में इन देशों में उपलब्ध नहीं होते अतः विदेशों से इन्हें आयात किया जाता है। इन आयातों को हम निम्न तीन श्रेणियों में बांट सकते है

(i) **विकास–सम्बन्धित आयात** – पिछड़े देशों से में आय में वृद्धि करने के लिए उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना आवश्यक है ताकि ये देश कम से कम अपने उत्पादन सम्भावना वक्र पर पहुँच सके। वर्तमान स्थिति यह है कि बहुत से पिछड़े देश अपने उत्पादन सम्भावना वक्र के भीतर ही उत्पादन करते है।

(ii) **निर्वाह अथवा अनुरक्षण आयात** – जब अर्द्ध–विकसित देशों में एक निश्चित उत्पादन क्षमता की स्थापना होती है तो उसका पूर्ण प्रयोग करने के लिए निरन्तर कच्चे माल एवं मध्यवर्ती वस्तुओं की आवश्यकता होती है जो सदैव अर्द्ध–विकसित देशों में उपलब्ध नहीं हो पाती। अतः इनका विदेशों से आयात किया जाता है।

(iii) **अस्फीतिकारी आयात** – जब अर्द्ध–विकसित देशों में मुद्रा–प्रसार के कारण स्फीतिक दशाएं फैल जाती है तो दीर्घकाल में इनका आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में देश में वस्तुओं का अभाव हो जाता है एवं अर्थव्यवस्था असन्तुलित हो जाती है। इसे दूर करने के लिए विदेशों से वस्तुओं का आयात किया जाता है जिससे अर्थव्यवस्था में स्थिरता आती है और आर्थिक विकास सम्भव होता है। अतः ऐसे आयात को अस्फीतिकारी आयात कहते है।

4. **भुगतान सन्तुलन का आर्थिक विकास पर प्रभाव** – भुगतान सन्तुलन की स्थिति आर्थिक विकास और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध को अच्छी तरह व्यक्त करती है। पिछड़े हुए देश प्रारम्भिक स्थिति में निर्यातों की तुलना में आयात अधिक करते है तथा उनका विनियोग, बचत की तुलना में अधिक होता है।

5. **पूंजी संचय एवं बचत क्षमता में वृद्धि** – प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने विदेशी व्यापार के प्रभाव को नष्ट किया है जो देश के साधनों पर पड़ता है। उन्होंने बताया कि विदेशी व्यापार के फलस्वरूप साधनों का

कुशलतम ढंग से प्रयोग किया जाता है जिसक फलस्वरूप वास्तविक आय में वृद्धि के साथ बचत करने की क्षमता भी बढ़ती है। विदेशों से व्यापार करने से बाजार का विस्तार होता है और विनियोग प्रोत्साहित होते है।

6. **व्यापार की शर्तो का आर्थिक विकास पर प्रभाव** – अनुकूल व्यापार की शर्तो के फलस्वरूप औद्योगिक और गैर–औद्योगिक देशों, दोनों को लाभ हूआ है। अर्द्ध–विकसित देशों ने विकसित देशों को आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति की है जिससे वहां औद्योगीकरण बढ़ा है और इसके बदले औद्योगिक देशों ने अर्द्ध–विकसित देशों का उपभोग और पूंजीगत वस्तुएं प्रदान की है।

7. **गतिशील लाभ – हैबरलर** के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अर्द्ध–विकसित देशों को निम्न चार गतिशील लाभ प्राप्त होते है –

(i) मशीन, पूंजी, कच्चे माल, अर्द्ध–निर्मित वस्तुएं तथा अन्य भौतिक साधनों की उपलब्धि।

(ii) देश में अन्तर्राष्ट्रीय विनियोग से पूंजी की प्राप्ति।

(iii) तकनीक एवं नव–प्रवर्तन के लाभ।

(iv) विदेशी प्रतियोगिता से कुशल एवं अधिक उत्पादन।

VPM CLASSES